# साधो देखो जग बौराना

● ओशो

धर्म क्या है?
शब्दों में, शास्त्रों में, क्रियाकांडों में, या तुम्हारी अंतरात्मा में, तुम में, तुम्हारी चेतना की प्रज्वलित अग्नि में?

धर्म कहां है?

मंदिरों में, मस्जिदों में, गुरुद्वारों में?

आदमी के बनाये हुए मंदिर-मस्जिदों में धर्म हो कैसे सकता है? धर्म तो वहां है जहां परमात्मा के हाथ की छाप है? और तुमसे ज़्यादा उसके हाथ की छाप और कहां है? मनुष्य की चेतना इस जगत में सर्वाधिक महिमापूर्ण है. वहीं उसका मंदिर है; वहीं धर्म है.

धर्म है व्यक्ति और समष्टि के बीच प्रेम की एक प्रतीति– ऐसे प्रेम की जहां बूंद खो देती है अपने को सागर में और सागर हो जाती है; जहां सागर खो देता है अपने को बूंद में और बूंद हो जाता है; व्यक्ति और समष्टि के बीच ध्यान का ऐसा पल, जहां व्यक्ति तो शून्य हो जाता है, और समष्टि महाव्यक्तित्व की गरिमा से भर जाती है. इसलिए तो हम उस क्षण को ईश्वर का साक्षात्कार कहते हैं. व्यक्ति तो मिट जाता है, समष्टि में व्यक्तित्व छा जाता है; सारी समष्टि एक महाव्यक्तित्व का रूप ले लेती है.

धर्म, व्यक्ति और समष्टि के बीच घटी एक अनूठी घटना है; लेकिन ध्यान रहे– सदा व्यक्ति और समष्टि के बीच, व्यक्ति और समाज के बीच नहीं. और जिनको तुम धर्म कहते हो, वे सभी व्यक्ति और समाज के सम्बंध हैं. अच्छा हो, तुम उन्हें सम्प्रदाय कहो, धर्म नहीं. और सम्प्रदाय से धर्म का उतना ही सम्बंध है जितना जीवन का मुर्दा लाश से.

धर्म जब मर जाता है, तब सम्प्रदाय पैदा होता है. और जो सम्प्रदाय में बंधे रह जाते हैं, वे कभी धर्म को उपलब्ध नहीं हो पाते. धर्म को उपलब्ध होना हो तो सम्प्रदाय की लाश से मुक्त होना अत्यंत अनिवार्य है. लाश को कोई सम्हालकर रखता है? लेकिन तुम समझदार नहीं हो और लाश को सदियों से सम्हालकर रखे हो– लाश सड़ती जाती है, उससे सिर्फ दुर्गंध आती है. उससे पृथ्वी पर कोई प्रेम का राज्य निर्मित नहीं होता, सिर्फ घृणा फैलती है, ज़हर फैलता है.

तीन सौ सम्प्रदाय हैं पृथ्वी पर, और

सब आपस में कलह से भरे हुए हैं. सब एक-दूसरे की निंदा और एक-दूसरे को गलत सिद्ध करने की चेष्टा में संलग्न हैं, जैसे घृणा ही उनका धंधा है.

तुम्हारे मंदिरों, मस्जिदों, गुरुद्वारों से अब प्रेम के स्वर नहीं उठते, प्रार्थना की बांसुरी नहीं बजती, सिर्फ घृणा का धुआं उठता है. यह हो सकता है कि तुम घृणा के धुएं के इतने आदी हो गये हो कि तुम्हें पता ही नहीं चलता; या तुम्हारी आंखें उस धुएं से इतनी भर गयी हैं कि अब आंखों से आंसू नहीं गिरते; या तुम इतने अंधे हो गये हो कि आंख ही तुम्हारे पास नहीं कि जिससे आंसू गिर सकें.

तुम्हारी ज्योति बहुत दीयों में जली है. ज्योति उड़ जाती है; दीए को सम्हाल कर रखते जाओ, मुश्किल में पड़ जाओगे. जिस जगह पर तुम बैठे हो, एक-एक इंच जगह पर करोड़ों लाशें गड़ी हैं. क्योंकि कितने लोग हैं! कितनी आत्माएं हैं! और कितने वर्तुल सबने लिए हैं!

ज्योति चली जाती है, लाश को दफना आते हैं. धर्म के साथ ऐसा नहीं हो पाया– ज्योति तो चली जाती है, लाश रह जाती है. लाश को हम सम्हाल लेते हैं. लाश सूक्ष्म है, इसलिए दुर्गंध का भी पता उन्हीं को चलता है जिनके पास बड़े तीव्र नासापुट हैं. लाश इतनी सूक्ष्म है कि कबीर जैसी आंखें हों, तो ही दिखाई पड़ती है.

इसलिए धर्म पर सम्प्रदाय इकट्ठे हो जाते हैं और जब भी कोई नया दीया आविर्भूत होता है– सनातन की ज्योति को लेकर, तब मरे हुए सारे सम्प्रदाय उसके विरोध में खड़े हो जाते हैं. धर्म के दीए को बुझाने में संलग्न रहते हैं. वे जो प्रतिष्ठित सम्प्रदाय हैं, वे जब भी धर्म की ज्योति जगेगी, तभी भयभीत हो जाते हैं– खतरा पैदा हुआ. क्योंकि यह एक ज्योति उन सबको मिटा देने के लिए काफी है.

साम्प्रदायिक व्यक्ति बड़ी दुविधा में जीता है. मगर यह स्वाभाविक है. जिस दिन यह समझ लिया जाएगा पृथ्वी पर कि यह स्वाभाविक है, उस दिन यह बंद हो जाएगा. और जो व्यवहार हम लाश के साथ करते हैं, वही व्यवहार हमें सम्प्रदाय के साथ करना चाहिए. अगर लाश को ज़्यादा देर चिपकाया तो उसकी दुर्गंध तुम्हें भी दुर्गंध से भर देगी. आज नहीं कल, अपने को समझाकर लाश से छुटकारा लेना पड़ता है.

जो लाश के साथ होता है, वही धर्म के साथ होना चाहिए– जब धर्म मर जाए. रोते हुए जाओ, दुखी आओ; लेकिन उसे विदा दे दो. और जब तक पृथ्वी पर लोग सम्प्रदायों को विदा देने की हिम्मत नहीं जुटाते, तब तक लाशें बढ़ती जाएंगी, दुर्गंध फैलती जाएगी.

अब हम समझने की कोशिश करें कबीर के वचनों को– 'साधो देखो जग

बौराना.' कहते हैं, देखो, सारा जगत पागल हो गया है; और पागल इसलिए हो गया है कि धर्म की जगह सम्प्रदाय में जी रहा है; जीवित धर्म को तो भूल गया है, मृत धर्म को पकड़ लिया है.

**'सांची कहौं तो मारन धावें, झूठे जग पतियाना.'**

बड़े आश्चर्य की बात है, कबीर कहते हैं, कैसा पागल है यह संसार कि अगर सच कहूं तो मुझे मारने लोग आते हैं, अगर झूठ कहूं तो पतियाते हैं! (पतियाना अर्थात विश्वास करना)

सम्प्रदाय झूठ है, धर्म सत्य है. और जब भी तुम झूठ की बात करोगे, लोग पतियाएंगे. जब भी तुम सम्प्रदाय की बात करोगे, लोग कहेंगे; वाह, वाह! क्योंकि तुम उन्हीं की मान्यताओं की बात कर रहे हो; तुम उन्हीं के अहंकार की तृप्ति कर रहे हो. जब भी तुम धर्म की बात करोगे, लोग खड़े हो जाएंगे, दुश्मन की तरह. क्योंकि अब तुमने कुछ ऐसी बात कही जो उनके विपरीत है.

धर्म सदा सम्प्रदाय के विपरीत है. ज्ञानी सदा पुरोहित के विपरीत है. प्रबुद्ध व्यक्ति सदा पंडित के विपरीत है.

**'साधो देखो जग बौराना.**
**सांची कहौं तो मारन धावें, झूठे जग पतियाना.'**
**'हिंदू कहत है राम हमारा, मुसलमान रहमाना.'**

परमात्मा किसी का भी नहीं है. तुम परमात्मा के हो सकते हो, वह समझ में आता है; लेकिन तुम उलटा काम करते हो– तुम परमात्मा को अपना बना लेते हो. परमात्मा के हो जाओ, क्योंकि तुम बूंद हो, वह सागर है; समर्पण कर दो अपना. लीन हो जाओ विराट में, समझ में आता है. लेकिन लीन तो कोई नहीं होता; लोग उलटे परमात्मा पर ही कब्जा कर लेते हैं. बूंद सागर पर कब्जा कर रही है. मुट्ठी में आकाश बांधने की कोशिश चल रही है.

**'हिंदू कहत है राम हमारा, मुसलमान रहमाना.'**

दावेदारी बन गयी है. धर्म सिखाता है समर्पण; सम्प्रदाय करता है दावेदारी. धर्म तो सिखाता है कैसे तुम मिटो और सम्प्रदाय इस जगत में सबसे असम्भव बात करवाता है कि तुम परमात्मा के ऊपर भी कब्जा कर लो, तुम दावेदार हो जाओ. परमात्मा तुम्हारा रक्षक है लेकिन सम्प्रदाय कहता है, तुम परमात्मा की रक्षा करो– कहीं मुसलमान आकर मंदिर की मूर्ति न तोड़ दें; कहीं मस्जिद में कोई हिंदू आग न लगा दे; कहीं कुरान का कोई अपमान न कर दे; कहीं गीता का कोई विरोध न कर दे– तुम्हें रक्षा करनी है, जैसे तुम्हारे बिना परमात्मा बड़ी असहाय अवस्था में पड़ जाएगा; अगर तुम न हुए, परमात्मा का क्या होगा!– जगह-जगह कुटेगा, पिटेगा; लोग आग लगाएंगे, मारेंगे, काटेंगे, तोड़ेंगे! तुम ही उसे बचा रहे हो!

परमात्मा को तुमने समझा क्या है– कोई वस्तु है, जिस पर तुम दावा कर दो?

कबीर के लिए तो बहुत मुश्किल रही होगी, क्योंकि कबीर का कुछ पक्का नहीं है कि वे हिंदू थे कि मुसलमान. कबीर जैसे किसी आदमी का कुछ पक्का नहीं होता. और उनके साथ तो जीवन में भी घटना ऐसी घट गयी थी कि मां-बाप बच्चे को सरोवर के किनारे छोड़कर चले गये– किसका था, कभी पता नहीं चला; जायज था, कुछ पता नहीं चला. ऐसा खयाल ही था लोगों का कि मुसलमान का बच्चा है. रहा होगा. और एक हिंदू संन्यासी ने कबीर को बड़ा किया. तो गुरु तो हिंदू था, मां-बाप शायद मुसलमान रहे होंगे.

*अधर्म के लिए लड़ो तो मन में थोड़ा अपराध भी मालूम पड़ता है; धर्म के लिए लड़ो तो काम इतना धार्मिक है कि अपराध का तो कोई सवाल ही नहीं.*

तो कबीर तो बड़ी मुश्किल में थे. हिंदू न घुसने दे मंदिर में उनको, क्योंकि वे मुसलमान हैं; मुसलमान न घुसने दे मस्जिद में क्योंकि वे हिंदू गुरु के शिष्य और हिंदू घर में पले हैं– 'यहां कहां आते हो?' जिन्होंने ज़िंदगी भर कबीर को मंदिर-मस्जिद में न घुसने दिया; लेकिन मरते वक्त उन्होंने झगड़ा खड़ा कर दिया. जब वे मर गये, तो मुसलमानों ने कहा कि हम दफनाएंगे. मस्जिद में तो न घुसने दिया. कबीर ठीक ही कहते हैं कि 'साधो देखो जग बौराना!' और हिंदुओं ने कहा कि हम दफनाने न देंगे, जलाएंगे.

जीवित कबीर को दोनों ने इनकार किया. वे लाश पर कब्जा करने आ गये. यही तो सम्प्रदाय की कुशलता है : धर्म को इन्कार करता है, जीवित को इन्कार करता है; क्योंकि जीवित में खतरा है. जीवित के पास तुम गये, तो बदलोगे; मरे के पास गये तो बदल ही नहीं सकते, मुर्दे पर तुम कब्जा कर लोगे. मरे कबीर पर कब्जा करने हिंदू-मुसलमान दोनों पहुंच गये. और यह कहानी कुछ ऐसी है कि लगती है कि सार्वभौम है. नानक के साथ यही हुआ. तारण के साथ यही हुआ. और भी संतों के जीवन में ऐसा हुआ कि मरते वक्त लोग कब्जा करने पहुंच गये.

यह कठिनाई समझ में आती है; क्योंकि मुर्दे पर कब्जा किया जा सकता है, जीवित कबीर को तो तुम छू भी न सकोगे, छुओगे तो जल जाओगे. जीवित कबीर के पास जाओ तो क्रांति घटेगी. वह तो आग है– ऐसी आग है जिसमें तुम्हारा कचरा जल जाएगा और सोना बचेगा. लेकिन मरे हुए कबीर को जलाने लोग पहुंच गये. अब भी, जहां कबीर की मृत्यु घटी, वह मकान दो हिस्सों में बंटा है– आधे पर हिंदुओं का कब्जा है, आधे पर मुसलमान का– बीच में एक बड़ी दीवार है. आधे को मुसलमान

पूजते हैं– वह कबीर की दरगाह है; और आधे को हिंदू पूजते हैं– वह कबीर की समाधि है.

**हिंदू कहत है राम हमारा, मुसलमान रहमाना**
**आपस में दोऊ लड़े मरतु हैं, मरम कोई नहिं जाना**

और मर्म की बात इतनी है कि तुम परमात्मा के हो जाओ, काफी है. और जो परमात्मा का हो गया, उसी ने मर्म जाना.

धर्म को भी लोग लड़ाई का स्थल बना लिए हैं. धर्म का एक ही उपयोग है कि उसके द्वारा लोग अच्छी तरह लड़ सकते हैं. और ध्यान रखना, अधर्म के लिए लड़ो तो मन में थोड़ा अपराध भी मालूम पड़ता है; धर्म के लिए लड़ो तो काम इतना धार्मिक है कि अपराध का तो कोई सवाल ही नहीं. मुसलमान सोचता है कि अगर धर्मयुद्ध में मारे गये तो जन्नत निश्चित है. हिंदू सोचता है कि अगर धर्म के लिए शहीद हो गये तो स्वर्ग के दरवाज़े पर बैंड-बाजे मौजूद हैं. एक बात खयाल में ले लेना कि अच्छी बात के लिए लोग लड़ना सुगम पाते हैं.

इसलिए लोग लड़ने के लिए अच्छी बातें खोज लेते हैं; कारण तो लड़ना है, बहाने अच्छे खोज लेते हैं : हिंदू धर्म खतरे में है– झगड़ा शुरू! अब हिंदू-धर्म को बचाना ही पड़ेगा! तुमने ठेका लिया है? तुम धर्म के बचाने वाले कौन? कि इस्लाम खतरे में है : बस पागलों की दौड़ शुरू हो गयी!

और फिर धर्म के नाम पर तुम जितना अधर्म कर सकते हो उतना किसी और चीज़ के नाम पर नहीं कर सकते. सत्य के नाम पर झूठ बोलो; अधर्म के नाम पर धर्म करो; अहिंसा के नाम पर तलवार उठा लो! कबीर ठीक ही कहते हैं, 'साधो देखो जग बौराना!' लोग बिल्कुल पागल मालूम होते हैं, अहिंसा के लिए भी लोग तलवार उठा लेते हैं; यह भी भूल जाते हैं कि तलवार उठाने का मतलब है कि तुमने हिंसा कर दी. धर्म के लिए लड़ने का मतलब है कि तुमने ही अधर्म करना शुरू कर दिया. युद्ध ही तो अधर्म है. प्रेम है धर्म, घृणा है अधर्म. और धर्म के नाम पर कितनी घृणा फैलाई जाती है! धर्म है निरहंकार, लेकिन धर्म के नाम पर कितना अहंकार चलता है!

सम्प्रदाय जीते हैं क्षुद्र तर्कों पर, बहुत छोटे तर्कों पर. बहुत छोटी-छोटी घृणा को जमा-जमाकर धीरे-धीरे वे अम्बार खड़ा करते हैं. एक-एक ईंट घृणा की है, विद्वेष की है; दूसरे की निंदा की है, दूसरे को छोटा, बुरा बताने की है. प्रेम तो कहीं पता भी नहीं चलता. और जो घृणा फैला रहे हैं, वे प्रार्थना कैसे करते होंगे? उनकी प्रार्थना में भी वही घृणा होगी.

प्रेम फैलाओ तो ही तुम्हारी प्रार्थना में प्रेम आयेगा. क्योंकि जो प्रेम तुम्हारे जीवन का हिस्सा न बन जाए, वह तुम्हारी प्रार्थना में कभी आविर्भूत न होगा. तुमसे ही तो

प्रार्थना उठेगी.

**साधो देखो जग बौराना.**

**आपस में दोउ लड़े मरतु हैं, मरम कोई नहिं जाना**

**बहुत मिले मोहि नेमी धरमी, प्रात करै असनाना**

बड़े नियम और धर्म को मानने वाले लोग– कबीर कहते हैं– मैंने देखे, रोज सुबह स्नान करते हैं काशी में. सब इकट्ठे ही हैं वहीं नियमी-धर्मी.

'आतम छोड़ि पखानै पूजै, तिनका थोथा ग्यान.' लेकिन मैं देखता हूं कि पूजा वे आत्मा की नहीं करते, पत्थरों की करते हैं. स्नान करते हैं, पूजा-पाठ करते हैं, नियम-धर्म का पालन करते हैं– लेकिन पूजा पत्थर की करते हैं, चैतन्य की नहीं; दीये को पूजते हैं, ज्योति को नहीं. तो क्या होगा तुम्हारे स्नान से? पाप तुम करोगे, गंगा तुम्हारे पाप धोयेगी? गंगा ने कौन-से पाप किये हैं जो तुम्हारे पाप धोये? गंगा का क्या कसूर है? कितना ही तुम स्नान करो, शरीर को रगड़-रगड़कर कितना ही धो डालो, इसके भीतर की चेतना तो न निखरेगी.

साम्प्रदायिक व्यक्ति पूरा क्रियाकांड कर देता है; एक से लेकर सौ तक सब नियम पूरे कर देता है, और फिर भी चूक जाता है. क्योंकि वह जो क्रियाकांड है, सहयोगी हो सकता है, लेकिन वही सब कुछ नहीं है. और वह जो क्रियाकांड है, वह बदला भी जा सकता है. वह अनिवार्य भी नहीं है. लेकिन जो अनिवार्य है, वह नहीं बदला जा सकता.

दीया कई ढंग का हो सकता है, ज्योति एक ही ढंग की होती है. ज्योति का स्वभाव एक ही होगा. क्रियाकांड दीये के भीतर इतना लीन हो जाता है, इतनी बारीक नक्काशी करने लगता है दीये पर कि दीये में ही जीवन चुक जाता है, ज्योति जलाने का मौका ही नहीं आता. इतनी ही बात ख्याल रखना.

**आसन मारि डिंभ धरि बैठे, मन में बहुत गुमाना**

**पीपा पाथर पूजन लागे, तीरथ वर्त भुलाना**

असली तीर्थ तो भूल ही गया जो भीतर है. तीर्थ का अर्थ होता है– वह जगह जहां नाव परमात्मा की तरफ छूटी. तो वह तीर्थ तो भूल ही गया. वह तो भीतर है. इस तरफ तुम हो, उस तरफ परमात्मा है– बीच में विराट जीवन की नदी है.

'पीपर पाथर पूजन लागे'– और लोग वृक्षों को पूज रहे हैं, पत्थरों को पूज रहे हैं. 'तीरथ वर्त भुलाना.' वर्त का अर्थ है : व्रत, संकल्प. न तो कोई संकल्प है जीवन में, न कोई व्रत है; बस ऐसे ही अंधे अंधों

*संकल्प का अर्थ होता है : समस्त जीवन को उंड़ेल देना एक क्षण में. तब दुबारा प्रार्थना करने की ज़रूरत नहीं है.*

को धक्का दिये जा रहे हैं. दूसरे कर रहे हैं, तुम भी कर रहे हो. वही काम संकल्प से किया जाए तो धार्मिक हो जाता है; और वही काम बिना संकल्प के किया जाए तो साम्प्रदायिक हो जाता है. भीतर का संकल्प ही गुणात्मक भेद लाता है.

संकल्प का अर्थ होता है : समस्त जीवन को उंड़ेल देना एक क्षण में. तब दुबारा प्रार्थना करने की ज़रूरत नहीं है.

कबीर कहते हैं, 'न तीर्थ का पता, न संकल्प का पता; पत्थर, पीपर लोग पूजे जा रहे हैं–'

**साधो देखो जग बौराना**
**माला पहिरे टोपी पहिरे, छाप तिलक अनुमाना**
**साखी सबदै गावत भूलै, आतम खबर न जाना**

लोग माला पहने हैं लेकिन उन्हें कुछ भी पता नहीं है कि माला क्यों पहने हुए हैं. माला पर हाथ चल रहे हैं, मन कहीं और चल रहा है.

'साखी सबदै गावत भूलै'– और भजन-कीर्तन में लोग भूल जाते हैं, डूब जाते हैं, और सोचते हैं कि यह ज्ञान की घड़ी घट रही है. कबीर कहते हैं, 'आतम खबर न जाना.'

वह भूलना संगीत का है. वह तो वेश्या के घर भी जो संगीत को सुनता है, वह भी सिर डुलाने लगता है. उसमें तुम बहुत मूल्य मत समझ लेना. वह तो अच्छा संगीतज्ञ भी डुबा देता है लोगों को, सराबोर कर देता है.

'साखी सबदै गावत भूलै'– तो भजन-कीर्तन में लग जाते हैं लोग और सिर डुलाने लगते है और समझते हैं कि बड़ी काम की बात हो रही है, कि बड़ा धर्म कमा रहे हैं, कि देखो कैसे लीन हो गये हैं. 'आतम खबर न जाना.' इन सब बातों से कुछ भी न होगा, जब तक भीतर का बोध न आ जाए. और भीतर का बोध आ जाए तो भजन-कीर्तन, माला, पत्थर सभी महत्वपूर्ण हो जाते हैं, और भीतर का बोध न आए तो सभी व्यर्थ हो जाते हैं. इस बात को ठीक खयाल में रखें.

**घर घर मंत्र जो देत फिरत है माया के अभिमाना**
**गुरुवा सहित सिष्य सब बूड़े, अंतकाल पछिताना**

और लोगों ने धंधा बना रखा है, घर-घर मंत्र देते फिरते हैं. कबीर कहते हैं, इन ब्राह्मणों, पंडितों ने व्यवसाय बना लिया है. वे देते फिरते हैं, बांटते फिरते हैं, और लोग सोचते हैं कि बस मंत्र मिल गया, अब क्या करना है! कान फूंक दिए गुरु ने, अब क्या करना है! निपट गये, गुरुमंत्र ले लिया!

कबीर कहते हैं, 'गुरुवा सहित शिष्य सब बूड़े'– गुरु और उनके शिष्य सब डूब जाते हैं, लेकिन पता अंतकाल में चलता है, उसके पहले पता नहीं चलता है. 'अंतकाल पछिताना'– जब मौत करीब आती है तब पता चलता है कि वह सब ज़िंदगी तो ऐसे ही गयी. न गुरु-मंत्र बचा

सकता है, न माला का फेरना बचा सकता है, न पत्थर का पूजना बचाता है– मौत सामने खड़ी है! लेकिन तब समय भी नहीं बचता, कुछ करने का उपाय भी नहीं बचता.

*परमात्मा मिट रहा है सब तरफ से, क्योंकि वही है. तुम जिसे भी काटो, वही कटेगा. मंदिर जलाओ तो भी उसी का मंदिर जलता है; मस्जिद जलाओ तो भी उसी की मस्जिद जलती है. मूर्ति तोड़ो तो उसी की मूर्ति है.*

मरने के पहले सजग हो जाना. अगर थोड़ी ठीक से खोज की तो तुम गुरु को खोज ही लोगे. ठीक से खोज का अर्थ है : यह काम सस्ता नहीं है. गुरु के पास होने का मतलब है समर्पण. मुफ्त नहीं मिलता है मंत्र. जब तक तुम अपने को पूरा ही झुका न दो, तुम अपने को पूरा मिटा ही न दो, तब तक नहीं मिलता है मंत्र. बड़े साहस की ज़रूरत है.

**करै मुरीद कबर बतलावै, उनहं खुदा न जाना**
**हिंदू की दया मेहर तुरकन की, दोनों घर से भागी**

न तो हिंदू के हृदय में दया है और न मुसलमान के हृदय में मेहर है. दोनों की करुणा समाप्त हो गयी है. दोनों का प्रेम चुक गया है– 'दोनों घर से भागी.'

**'वह करै जिबह वां झटका मारै, आग दोउ घर लागी.'**

और दोनों घर जल रहे हैं : हिंदू का भी, मुसलमान का भी– सभी के घर जल रहे हैं. फर्क क्या है उनमें? फर्क बहुत ज़्यादा नहीं है. हिंदू भी कत्ल करते हैं. दोनों की करुणा घर से जा चुकी है, दोनों के घर में आग लगी है. और फर्क बचकाने हैं. बस, ऐसे छोटे-छोटे फर्क हैं, जिन फर्कों से कोई मतलब नहीं है. असली सवाल है कि तुम मारते हो : तुम जिबह करके मारते हो कि झटका करके मारते हो– इससे क्या फर्क पड़ता है? पशु को क्या फर्क पड़ता है? वह दोनों हालातों में मारा जाता है.

लेकिन सभी सम्प्रदायों में इसी तरह के छोटे-छोटे झगड़े हैं.

एक जैन मंदिर में गया. वहां झगड़ा हो गया था. जैनों के दो सम्प्रदाय लट्ठ लिये खड़े थे. मार-पीट हो गयी थी, पुलिस आ गयी. मैं मेहमान था उस गांव में. पास में ही मंदिर था, तो मैं देखने गया कि मामला क्या है? मामला बड़ा छोटा था. महावीर की प्रतिमा को दोनों पूजते हैं; लेकिन श्वेताबंर प्रतिमा के ऊपर आंख लगाकर, खुली आंखवाले महावीर को पूजते हैं; और दिगंबर बंद आंखवाले महावीर को पूजते हैं. झगड़ा हो गया. तो समय बंटा हुआ है उनका मंदिर में, सुबह बारह बजे तक एक सम्प्रदाय पूजता है, फिर बारह बजे के बाद दूसरा सम्प्रदाय पूजता है. एक दिन किसी की पूजा थोड़ी लम्बी चल गयी, साढ़े बारह हो गये– झगड़ा खड़ा हो

गया– 'अलग करो आंख!' बंद आंख वाले महावीर के भक्त आ गये.

कभी-कभी सम्प्रदायों के बीच के झगड़े देखकर हद दर्जे की मूढ़ता दिखाई पड़ती है. महावीर की आंख बंद या खुली– इससे क्या फर्क पड़ता है? पूजा तुम्हें करनी है, तुम्हारा हृदय खुला या बंद– इसकी फिक्र करो.

**या विधि हंसी चलत है हमको, आप कहावै स्याना**

कबीर कहते हैं, इससे हमें बड़ी हंसी आती है, और ये सब लोग सयाने हैं.'

**कहै कबीर सुनो भाई साधो, इनमें कौन दिवाना**

तुम बताओ, इनमें कौन दिवाना है? कबीर यह कह रहे हैं कि हमें तो ये सभी दीवाने दिखाई पड़ते हैं; सभी पागल हो गये हैं. लेकिन हरेक दावा कर रहा है कि हम सयाने हैं. और सब मिलकर परमात्मा को काट रहे हैं : कोई जिबह कर रहा है; कोई झटका मार रहा है– कटता है परमात्मा. एक छोटी-सी कहानी है, बड़ी पुरानी है.

एक गुरु के दो शिष्य हैं. वे दोनों सेवा करते हैं. गर्मी के दिन हैं. गुरु सोया है. दोनों ने कहा कि आधा-आधा बांट लो. तो बायां अंग एक ने ले लिया, दायां अंग दूसरे ने ले लिया. दोनों पैर दबा रहे हैं– गुरु के अपने-अपने अंग के. गुरु ने करवट ली, तो बाएं पैर पर पड़ गया. तो बाएं पैरवाले ने कहा, 'हटा ले अपना पैर, अगर मेरे पैर पर पड़ा ठीक नहीं होगा.' दूसरे शिष्य ने कहा, 'जा-जा. कौन हटा सकता है? अगर हो हिम्मत तो हटा दे.' बात बढ़ गयी. थोड़ी देर में दोनों लट्ठ लिए खड़े थे. गुरु की खींचातानी हो गयी. गुरु पिटे, बुरी तरह पिटे. क्योंकि जिसका बायां अंग था उसने दाएं को मारा, जिसका दायां अंग था उसने बाएं अंग को मारा.

परमात्मा मिट रहा है सब तरफ से, क्योंकि वही है. तुम जिसे भी काटो, वही कटेगा. मंदिर जलाओ तो भी उसी का मंदिर जलता है; मस्जिद जलाओ तो भी उसी की मस्जिद जलती है. मूर्ति तोड़ो तो उसी की मूर्ति है. वेद को जलाओ, उसी का वेद जलता है. वही है!

जैसे ही किसी व्यक्ति में थोड़ी-सी समझ उठनी शुरू होती है– यह सारा जगत उसी का मंदिर है! सब किताबें उसकी, सब पूजास्थल उसके! और ऐसी घड़ी में ही तुम योग्य बनते हो कि धर्म तुममें अवतरित हो जाए.

साम्प्रदायिक व्यक्ति ने कभी धर्म नहीं जाना और कभी जान नहीं सकता. जिन्हें धर्म जानना है उन्हें भीतर सब साम्प्रदायों से मुक्त हो जाना ज़रूरी है, सब धारणाओं से, सब भेदों से; और भीतर उसमें लीन हो जाना है जो तुम्हारा स्वभाव है. उस स्वभाव की तैयारी ही एक दिन तुम्हें परमात्मा से मिला देगी. और कहीं और खोजना नहीं, क्योंकि वह तुम्हारे भीतर है.

'कस्तूरी कुंडल बसै!'. **(सम्पादित)**